Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 1, January - 2023 Publication Date: 15/01/2023

DOIs:10.2018/SS/202301005 --:-- Research Paper / Article

वैदिक संस्कृति में षोडश संस्कार

डॉ. अर्चना प्रिय आर्य

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा : संस्कृत विभाग
कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

Email – archanapriyaarya@gmail.com

सारांश: हमारी वैदिक संस्कृति में सोलह संस्कारों का प्रचलन रहा है। बालक के गर्भ में प्रवेश करने से लेकर जीवनयापन की विविध परिस्थितियों में से गुजरते हुए शरीर छोड़ने तक विविध अवसरों पर 'संस्कारों' का आयोजन करने का हमारे धर्म शास्त्रों में विधान है। इन विधानों से व्यक्ति की अन्तः चेतना पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है और उसका सुसंस्कारी बन सकना सरल हो जाता है। ऋषि क्रान्तदर्शी अविष्कारक होते हैं। वे विवेक को महत्व देते हैं, परम्पराओं को नहीं। बालक के जन्म से लेकर नामकरण तक, अन्नप्राशन से लेकर मुंडन तक ऐसी श्रृंखला हमारे ऋषि बना गए जिसमें प्रत्येक में यज्ञ संपन्न कर विषिष्ट आहुतियां देकर बालक में श्रेष्ठता के, महानता के बीजों के आरोपण की व्यवस्था बनायी गयी। यही नहीं, शारीरिक, मानसिक विकास का भी पूर्ण ध्यान रखा गया। प्रस्तुत शोध पत्र में षोडश संस्कारों गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टी संस्कार तक के बारे में बताया गया है।

मुख्य बिन्दु : संस्कार, संस्कृति, वैदिक, ऋषि।

1. प्रस्तावना:

संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' माना जाता है। इसमें मनुष्य को आदेश दिया गया है- **"मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्"**। अर्थात् मनुष्य बन और दिव्यजन, दिव्यगुणों से ओत-प्रोत मनुष्य को जन्म दे। वैदिक संस्कृति में संस्कार इसी ओर मनुष्य को ले जाना चाहते हैं। जिस क्रिया से मन, वाणी उत्तम हो उसे संस्कार कहते हैं। संस्कार किसी वस्तु के पुराने स्वरुप को बदलकर उसे नया रुप देता है। जैसे सुनार सोने को अग्नि में तपाकर उसको परिष्कृत रुप देता है वैसे ही वैदिक संस्कृति में उत्पन्न होने वाले बालक को संस्कारों के माध्यम से उसके दुर्गणों को निकालकर उसमें सद्गुणों को भी डालने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रयत्न को संस्कार कहते हैं। चरक ऋषि ने भी कहा है- **"संस्कारो हि गुणन्तरा धान मुच्यते"** अर्थात् पहले से विद्यमान दुर्गणों को हटाकर उनकी जगह सद्गुणों का आद्यान करने को संस्कार कहते हैं। आत्मा जब-जब शरीर में आता है तब-तब वैदिक संस्कृति की व्यवस्था से संस्कारों की श्रृंखला से उसे ऐसा घेर दिया जाता है जिससे उस पर कोई अशुभ संस्कार पडने ही नहीं पाता है। वैदिक संस्कृति में मनुष्य को बिलकुल बदलकर उसमें आमूल-चूल परिवर्तन करने का जो प्रयास किया जाता है उसे ही संस्कार कहते हैं। संस्कार का अर्थ वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य समाज में रहने योग्य बन जाता है। वैदिक संस्कृति की जो विचारधारा है, उसके अनुसार यह जन्म पिछले जन्म व अगले जन्म यह सब संस्कारों द्वारा मानस शोधन का सिलसिला है। संस्कारों की लगातार चोट से आत्मतत्व पर पडी माया को धो डालने का प्रयत्न है। जैसे- एक मां बाजार से सब्जी खरीदकर लाती है। क्या उसे वैसे ही पका देती है? नहीं उसको बीनती है, धोती है, काटती है फिर उसमें मसाले आवश्यकतानुसार डालकर स्वादुव्यंजन तैयार करती है। इसी का नाम संस्कार है। एक माली समय-समय पर पौधों की कांट-छांट करता है। इससे उसका बगीचा आकर्षण दिखने लगता है। ये कटिंग करना ही संस्कार है। यह संस्कार भी छोटे-छोटे पौधों का ही होता है, जो पेड़ बन गये हैं उन्हें आकृति में ढालना कठिन होता है। वैदिक संस्कृति में 16 संस्कारों का विधान है, जो गर्भाधान संस्कार से अन्तेष्टी संस्कार तक हैं। इस शोधपत्र में इन्हीं 16 संस्कारों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है।

2. षोड़ष संस्कार:

संस्कारों की संख्या स्मृतिकारों, गृह्यसूत्रों के अनुसार भिन्न-भिन्न है, लेकिन वैदिक संस्कृति में षोडश अर्थात् 16 संस्कारों का ही वर्णन किया है, जो निम्न हैं-

1. गर्भाधान संस्कार, 2. पुंसवन संस्कार, 3. सीमन्तोन्नयन संस्कार, 4. जातकर्म संस्कार, 5. नामकरण संस्कार, 6. निष्क्रमण संस्कार, 7. अन्नप्राशन संस्कार, 8. चूड़ाकर्म संस्कार, 7. कर्णवेध संस्कार, 10. उपनयन संस्कार, 11. वेदारम्भ संस्कार, 12. सीमन्तोन्नयन संस्कार, 13. विवाह संस्कार, 14. वानप्रस्थ संस्कार, 15. सन्यास संस्कार, 16. अन्त्येष्टि संस्कार।

2.1. गर्भाधान संस्कार:

वैदिक संस्कृति में गर्भाधान को एक नवीन श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव वाली आत्मा को बुलाने के लिए धार्मिक पवित्र यज्ञ माना जाता है। जैसे अच्छे वृक्ष या खेती के लिए उत्तम भूमि, बीज, खाद, पानी, जलवायु तथा उसकी रक्षा आदि की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, ठीक ऐसे ही एक बलिष्ठ, श्रेष्ठ संस्कार वाली आत्मा को बुलाने के लिए पति-पत्नी गर्भाधान से पूर्व ही अनेक प्रकार की तैयारी करनी पड़ती है। आयुर्वेद के अनुसार गर्भाधान के लिए न्यूनतम आयु पुरूष के लिए 25 वर्ष तथा स्त्री के लिए 16 वर्ष तो होना ही चाहिए, इससे अधिक हो तो और अच्छा है। अपरिपक्व अवस्था में किया गया गर्भाधान श्रेष्ठ संतान उत्पन्न नहीं कर सकता। गर्भाधान से पहले व गर्भाधान के दौरान जैसी शसरीरिक व मानसिक स्थिति माता-पिता की होती है उसका आने वाले बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

2.2. पुंसवन संस्कार:

गर्भ में स्थित जो संतान है, चाहे पुत्र हो या पुत्री, वह पौरूषयुक्त अर्थात् बलवान, हष्ट-पुष्ट, निरोगी, दीर्घजीवी, तेजस्वी, सुंदर हो, यह इच्छा प्रत्येक बुद्धिमान माता-पिता की होती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जब मां के उदर में गर्भ ठहर जाता है तो उसके 2 या 3 मास के पश्चात् पुंसवन संस्कार किया जाता है।

2.3. सीमन्तोन्नयन संस्कार:

'सीमन्त' का अर्थ है- मस्तिष्क और 'उन्नयन' शब्द का अर्थ होता है विकास। इस प्रकार सीमन्तोन्नयन संस्कार का अर्थ हुआ- ऐसा संस्कार जिसमें माता का ध्यान मस्तिष्क के विकास पर केन्द्रित हो जाता है। पुंसवन संस्कार शारीरिक विकास का संस्कार है तो सीमन्तोन्नयन संस्कार मानसिक विकास का संस्कार है। इन दोनों संस्कारों में गर्भस्थ सन्तान का शारीरिक तथा मानसिक सब कुछ आता है। संस्कार पद्धति के निर्माताओं का यह अटल विश्वास था कि माता के संस्कारों का संतान पर चहुंमुखी प्रभाव पड़ता है, इसलिए सीमन्तोन्नयन संस्कार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

2.4. जातकर्म संस्कार:

जात शब्द 'जनीप्रादुर्भावे' धातु से बनता है। प्रादुर्भाव का अर्थ उत्पन्न होना है। तात्पर्य यह है बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् जो क्रियाएं मन्त्रों के साथ सम्पन्न की जाती है वे जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत आती है। जन्म लेने के बाद बालक के पिता शिशु के बुद्धि उत्पादन एवं आयुवर्द्धन हेतु जातकर्म करता है। जातकर्म संस्कार में सुवर्ण की शलाका से घी और शहद चाटना और उसी संस्कार में जीभ पर ओउम् लिख देना और कान में 'वेदोसि' का मंत्र फूंक देना ऐसी संस्कृति का सूचक है। पिता सन्तान के कान में उसके जन्म लेते ही यह बात फूंक देता है कि उसे संसार में ज्ञानी बनकर रहना होगा, अज्ञानी बनकर नहीं।

2.5. नामकरण संस्कार:

संसार का सब व्यवहार नाम के आधार पर ही चलता है। जब तक किसी वस्तु या प्राणी की संज्ञा नहीं होती तब तक उसके संबंध में ज्ञान प्रत्ययात्मक तो हो सकता है, परन्तु क्रियात्मक, व्यवहारात्मक तथा उपयोगात्मक नहीं हो सकता। सांसारिक सम्पूर्ण व्यवहार का कारण यह नाम ही है। यह कल्याणप्रद कर्मों में भाग्य का साधक है, निमित्त है। नाम से ही मनुष्य यशस्वी है। अतः नामकरण संस्कार अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः सभी देशों तथा सभी सम्प्रदायों में यह संस्कार किसी न किसी रुप में विद्यमान है।

2.6. निष्क्रमण संस्कार:

निष्क्रमण संस्कार का व्यवहारिक अर्थ केवल यही है कि एक निश्चित समय के पश्चात बालक को घर से बाहर उन्मुक वातावरण में लाना चाहिए। जन्म के चैथे महीने में पिता शिशु को इस संसार के लिये आवास गृह के एक सीमित क्षेत्र से बाहर निकाले। उसे बाह्य जगत् से परिचित कराने से पूर्व 'तच्चक्षुरिति' मंत्र के साथ सर्वप्रथम सूर्य दर्शन कराये। निश्चय ही इस संस्कार के पीछे एक ज्वलन्त भावना निहित है। इस अवस्था के बच्चे जिन्हें अभी समाज, शिक्षा और सभ्यता ने विकृत नहीं किया है, आशान्वित है। इनकी आंखों में आशा की दिव्य ज्योति, जिज्ञासा की सबल उत्सुकता और श्रद्धा की सफल दीपशिखा प्रज्वलित होती रहती है। नदियां सागर की ओर दौडती है, उनके प्राणों में आशा का संचार दिखलायी पडता है। आग की लपटें अपने केन्द्र सूर्य की ओर ही उठती है। इन छोटे-छोटे बच्चों की आंखों में जो आशा के दीप जलते हैं उन्हें सूर्य दर्शन के माध्यम से केन्द्राभिमुख जागतिक जीवन में प्रवेश होने का प्रथम द्वार खोला जाता है।

2.7. अन्नप्राशन संस्कार:

अन्नप्राशन का अर्थ है- जीवन में पहले पहल अन्न का खाना। शिशु जन्ममात्र से ही विकासोन्मुख होता है। मन-बुद्धि से लेकर शरीर पर्यन्त वह विकासशील रहता है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार भी पांच से छठे महीने के बाद शिशु के शरीर को ठोस आहार की आवश्यकता होती है। उसके शरीर की इस आवश्यकता प्रतीत होती है। इसी दृष्टि से छठे महीने में अन्नप्राशन संस्कार की योजना भी है। सर्वप्रथम स्थालीपाक पकाकर अग्नि में घी की आहुतियां डालकर 'देवी वबजमजयन्त' तथा 'बाजोनो अद्य' इन दो मन्त्रों को पढकर घी की दो आहुतियां डालनी चाहिये। संश्रव-प्राशन के बाद सभी प्रकार के रसों एवं अन्नों को मिलाकर पिता शिशु को चुपचाप या हन्त शब्द का उच्चारण करते हुये खिलाये। ब्राह्मण भोजनोपरान्त यह संस्कार सम्पन्न हो जाता है।

2.8. चूडाकर्म संस्कार:

चूड़ाकर्म संस्कार को मुंडन संस्कार, चूड़ाकरण संस्कार, केश-वपन, क्षौर आदि भी कहते हैं। चूड़ाकर्म का अर्थ है- सिर के बालों के संबंध में कर्म। मुंडन संस्कार जन्म के तीसरे वर्ष या एक वर्ष के भीतर कर देना चाहिए। स्वास्थ, सौन्दर्य, स्वच्छता और शक्ति संवर्धन के लिये चूडाकरण संस्कार की आवश्यकता होती है। नख और बाल का छेदन हर्ष, लाघव, सौभाग्य और नित्य उत्साह की वृद्धि के लिये परमावश्यक है। धार्मिक दृष्टि से भी शिखाहीन व्यक्ति को किसी धार्मिक कृत्य का कोई फल नहीं मिलता। चिकित्सा, व्यवहार और धर्म की दृष्टि से भी चूडाकरण संस्कार का अपना एक विशिष्ट महत्व है।

2.9. कर्णवेध संस्कार:

कर्णविध का अर्थ है- कान को बींध देना, उसमें छेद कर देना। सुश्रुत ने लिखा है- **"रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्यते"** अर्थात् बालक के कान दो उद्देष्यों से बीधें जाते हैं। एक उद्देश्य है बालक की रक्षा, दूसरा उद्देश्य है बालक के कानों में आभूषण डाल देना।

2.10. उपनयन संस्कार:

उपनयन संस्कार में मुख्य कर्म यज्ञोपवीत का धारण करना है। उपनयन शब्द का अर्थ है- उप अर्थात् समीप ले जाना। किसके समीप ले जाना अर्थात् आचार्य के। उपनयन संस्कार का अभिप्राय यह है कि अब माता-पिता अपने परिश्रम से बालक के जीवन पर ऐसे संस्कार डाल रहे थे, जिनसे वह इस जन्म के संस्कारों के कारण नव मानव बन सके। अब वे उसे आचार्य के पास ले जाने का श्रीगणेश करने वाले हैं, जिससे आचार्य, जिसका काम ही बच्चों को नया जीवन देना है, उन्हें नये सांचे में ढ़ालना है, बच्चे के जीवन को उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार एक नई दिशा दे सके। यज्ञोपवीत में तीन धागों का एक सूत्र बालक के शरीर पर डाला जाता है, जो तीन ऋणों के सूचक हैं- 1. ऋषि ऋण 2. पितृ ऋण 3. देव ऋण। यह संस्कार बच्चे के आठवें या ग्यारहवें वर्ष में किया जाता है।

2.11. वेदारम्भ संस्कार:

वेदारम्भ का अर्थ है, वेदाध्ययन के प्रारंभ करने का संस्कार। इस संस्कार के समय बालक को कहा जाता था- आज से तू ब्रम्हचारी है। आचार्य के अधीन रहकर तू विद्याभ्यास व वेदाभ्यास करना, आज्ञा का उल्लंघन न करना। वैदिक संस्कृति में आचार्य का काम सिर्फ विद्या देना ही नहीं था वरन् सदाचारी व्यक्ति तैयार करना भी था।

2.12. समावर्तन संस्कार:

समावर्तन संस्कार उसको कहते हैं कि जो ब्रम्हचर्य व्रत, सांगोपांग वेद विद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थ विज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होके विवाह विधान पूर्वक गृहस्थाश्रम को गृहण करने के लिए विद्यालय को छोड़कर घर की ओर आना।

2.13. विवाह संस्कार:

विवाह संस्कार मानव जीवन का एक आवश्यक एवं अपरिहार्य संस्कार है। समाज निर्माण की यह एक आधारशिला है। वैवाहिक जीवन के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। क्योंकि समाज व्यक्तियों के गुणनफल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह हमारे वैवाहिक अन्त सम्बन्धों का ही विस्तार है। व्यक्ति ही फैलकर समाज बन जाता है। विवाह उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रम्हचर्य व्रत, विद्याबल को प्राप्त तथा सब प्रकार के शुभ गुण-कर्म-स्वभावों में तुल्य, परस्पर प्रीतियुक्त होके, सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कार्य करने के लिए स्त्री और पुरूष का सम्बन्ध होता है।

2.14. वानप्रस्थ संस्कार:

वानप्रस्थ- संस्कार उसको कहते हैं कि जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके, पूर्ण ब्रम्हचर्य से पुत्र-पुत्री विवाह करे, और पुत्र की भी एक सन्तान हो जाए अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जाए, तब पुरूष वानप्रस्थ अर्थात् वन में जाकर तप और स्वाध्याय का जीवन व्यतीत करे। गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढ़ीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र हो जाए तो वन का आश्रय लेवें। वानप्रस्थाश्रम करने का समय 50 वर्ष के उपरान्त है।

2.15. सन्यास संस्कार:

सन्यास का अर्थ है- 'सं+न्यास' अर्थात् अब तक जो लगाव का बोझ उसके कन्धों पर लगा रहा है उसे उठाकर अलग धर देना, उसका न्यास कर देना, उसे छोड देना अर्थात् बिलकुल उतारकर फेंक देना। सन्यास संस्कार उसको करते हैं कि जो महादि आवरण, पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथ्वी में परोपकार्थ विचरे। अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परमानन्द परमेश्वर के सुख को जीता हुआ भोगकर व शरीर छोड के सर्वानन्दयुक्त मोक्ष को प्राप्त होना ये सन्यासियों के मुख्य कर्म हैं।

2.16. अन्त्येष्टी संस्कार:

अन्त्येष्टी कर्म उसको कहते हैं जो शरीर के अन्त का संस्कार है। इसके आगे उस शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध, नरयाग, पुरूषयाग कहते हैं। मृत्यु जीवन का अनिवार्य अंग है। इसलिए अन्त्येष्टी संस्कार से सम्बद्ध अनेक विधि-विधानों का सविस्तार वर्णन हमारे ऋषियो ने प्रस्तुत किया है। शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच भूतों का बना है। इसलिए मरने के बाद शरीर के इन पांच भूतों को जल्दी से जल्दी सूक्ष्म करके अपने मूल रूप में पहुंचा देना ही वैदिक पद्धति है।

3. निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास तथा सर्वांगींण निर्माण हो सकता है। मानव की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक उन्नति के लिये जन्म से लेकर मृत्यृपर्यन्त विभिन्न अवस्थाओं के अनुकूल संस्कारों की व्यवस्था वेद के मनीषी एवं कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ ऋषि-मुनियों ने बहुत ही सुन्दर ढंग से की है। इसलिये यह कहा गया है- **"संस्काराद् द्विज उच्यते"** संस्कारों से परिष्कृत मनुष्य द्विज कहलाते हैं। अन्यथा संस्कार हीन व्यक्ति द्विज बनने के योग्य नहीं होते और वे धन-धान्य से सम्पन्न होकर भी शुद्र ही रहते है। संसार का सुख, भौतिकता का सुख क्षणिक है केवल भौतिक साधन मनुष्य के तब तक सुख के साधन नहीं बन सकते जब तक कि सच्चे मानव का, सहदय मानव का निर्माण नहीं होता है। मानव निर्माण की आधारशिला है संस्कार। एक, दो, तीन नही अपितु 16 संस्कारों से संयुक्त होकर ही मानव-मानव बन सकता है। इस प्रकार मानव को मर्यादित मानव बनाते है संस्कार, दानव को मानव बनाते हैं संस्कार, चरित्र निर्माण करते हैं संस्कार, जीव को लक्ष्य तक पहुॅचाते हैं संस्कार, मानवीय गुणों का विकास करत हैं संस्कार, आत्मोन्नति के साधन हैं संस्कार, जन्म-जन्मातरों के दोषों का अपनयन कर उनमें उत्तम गुणों का संचार करते है संस्कार, संस्कार से मानव कमनीय बनता है। अतः जीवन निर्माण के लिये हमें संस्कारों को अपनाना चाहिये।

संदर्भ:

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
2. आचार्य श्रीराम शर्मा, ऋग्वेद संहिता, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
3. महर्षि दयानंद सरस्वती, यजुर्वेद भाषा भाष्ये, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली।
4. महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, दयानन्दाश्रम, अजमेर।
5. महर्षि दयानंद सरस्वती, संस्कार विधि, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
6. सम्पादक अमियचन्द्र शास्त्री सुधेन्दु, शतपथ ब्राम्हण, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा।
7. डा. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, संस्कार-चन्द्रिका, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. आचार्य प्रेमभुक्षु, शुद्ध रामायण, सत्य प्रकाशन, वेदमंदिर, मथुरा।
9. आचार्य प्रेमभुक्षु, शुद्ध महाभारत, सत्य प्रकाशन, वेदमंदिर, मथुरा।
10. पं. शिवकुमार शास्त्री, श्रुति सौरभ, समर्पण शोध संस्थान, गाजियाबाद।
11. आचार्य श्रीराम शर्मा, षोड़ष संस्कार विवेचन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
12. आचार्य भगवानदेव चैतन्य, पूर्ण व्यक्तित्व का आधार सोलह संस्कार, विजयकुमार गोविंदराम हासानंद, दिल्ली।
13. आचार्य श्रीराम शर्मा, संस्कारों की पुण्य परम्परा, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
14. स्वामी विद्यानंद विदेह, गृहस्थ विज्ञान, वेद संस्थान, अजमेर।
15. दीक्षानंद सरस्वती, उपनयन सर्वस्व, समर्पण शोध संस्थान, दिल्ली।
16. दीक्षानंद सरस्वती, नाम सर्वस्व, समर्पण शोध संस्थान, दिल्ली।
17. डा. रामनाथ वेदालंकार, वैदिक नारी, समर्पण शोध संस्थान, दिल्ली।
18. साध्वी ऋतम्भरा, मां वात्सल्य की नारायणी धारा, वात्सल्य प्रकाशन, दिल्ली।
19. स्वामी जगदीश्वरानंद सरस्वती, महाभारतम्, विजयकुमार हासानंद, दिल्ली।
20. पं0 रघुनंदन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, वेद ज्योति प्रेस, दिल्ली।
21. डा. जगदीशचन्द्र मिश्र, पारस्करगृहसूत्रम्, चैखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
24. आचार्य सत्यप्रिय, ब्राम्हणग्रंथों की उपयोगिता, वैदिक आश्रम तिजारा, अलवर।
25. डा. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, उपनिषद प्रकाश, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, दिल्ली।
26. डा. गंगा सहाय प्रेमी, वैदिक सूक्ति संग्रह, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा।
27. पं. भगवद्दत, वैदिक वांग्मय का इतिहास, प्रणव प्रकाशन, दिल्ली।
28. प्रो. सुरेन्द्र कुमार, विशुद्ध मनुस्मृति, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
29. डा. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, श्रीमद्भागवत गीता, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।
30. सम्पादक: पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पणिनीयः अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, आर्ष प्रकाशन , नई दिल्ली ।